व्यवस्था और परिवार

बहुत प्राचोन काल से परिवार व्यवस्था की प्रथम इकाई है। चाहे मुस्लिम शासन काल रहा हो या उसके पूर्व का काल, परिवार व्यवस्था समाज व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग रही है। मुस्लिम शासन काल के बाद भी परिवार व्यवस्था तो कायम रही भले ही उसके स्वरूप मे कुछ गिरावट आनी शुरू हुई। परिवार व्यवस्था को नकारकर व्यक्ति को व्यवस्था की सीधी इकाई मानने की संवैधानिक व्यवस्था की गई। समाज व्यवस्था में तो परिवार व्यवस्था का प्रचलन रहा किन्तु संवैधानिक व्यवस्था म परिवार प्रणाली को पूरी तरह नकार देने स यह व्यवस्था कमजोर होने लगी, टूटने लगी। वर्तमान समय म परिवार की न कोई स्पष्ट परिभाषा है, न ही मान्यता और न ही व्यवस्था से समन्वय। परिवार व्यवस्था एक टूट रही प्रणाली के अवशेष के रूप में जीवित हैं।

परिवार की वर्तमान परिभाषा मे, मुख्य रूप से पति पत्नी आर बच्चे ही माने जाते है। यदि वृद्ध माता पिता भी जीवित हो तो वे भी परिवार के सदस्य माने जाते है। यदि किसी परिवार के संचालक या मुखिया का संबंध परिवार के किसी सदस्य से भाई का हो तो वह संयुक्त परिवार माना जाता है अब तक भारत म यही मान्यता हैं।

परिवार की सम्पत्ति का मामला बहुत ही अस्पष्ट, बेतरतीब तथा विवादास्पद है। भाईयो का हिस्सा बराबर होगा माता पिता का क्या होगा, पति पत्नी का क्या होगा, लडकिया का विवाह पूर्व और विवाह पश्चात सम्पत्ति मे कैसा हिस्सा होगा तथा परिवार म रहते हुए व्यक्तिगत सम्पत्ति पृथक रखने का अधिकार रखने का अधिकार जैसे मामला में समाज की मान्यताएॅ तथा कानून बिल्कुल पृथक पृथक है। हिन्दुआ और मुसलमानो के बीच तो सम्पत्ति का अधिकार ही पृथक पृथक धारणाएॅ है ही, हिन्दुआ म भी बंगाल बिहार, यू.पी. के आधार पर पृथक पृथक कानून बनाकर इस व्यवस्था का और ही जटिल बना दिया है भारतीय न्यायालयों मे इस सम्पत्ति संबंधी पारिवारिक विवादो में मुकदमों की संख्या जटिल प्रणाली का प्रमाण है। परिवार की सम्पत्ति संबंधी जटिल कानूनी और सामाजिक अवधारणाओं और उनके बीच स्थापित विरोधाभाषाओं ने परिवार की ट्टन की पृष्टभूमि बनाने में बहुत सहायता की हैं।

व्यक्ति और समाज के बीच व्यवस्था कि अनेक इकाईयों की आवश्यकता थी। व्यक्ति और समाज के बीच परिवार, गांव, जिला, प्रदेश, राष्ट्र जैसी व्यवस्था की इकाईयॉ यदि बनी हाती तो सब कुछ व्यवस्थित चल सकता था किन्तु ऐसी कोई इकाई बन नही सकी क्योकि बीच मे राष्ट्र रूपी इकाई ने स्वयं को समाज (विश्व) से स्वतंत्र इकाई घोषित कर दिया, दूसरी ओर राष्ट रूपी इकाई ने प्रदेश से नीचे किसी इकाई को मान्यता ही नही दी। भारतीय संविधान ने राष्ट्र का राज्या का संघ घोषित कर दिया। इस व्यवस्था मे व्यक्तियो को मूल अधिकार प्रदान करके राज्य और राष्ट्र के बीच सारे अधिकार और दायित्व बाट लिये गये परिवार शब्द को तो छूआ ही नही गया, गांव और जिले को भी प्रदेश व्यवस्था के अधोन कर दिये गया। परिणाम जो होना था वह हुआ। पूरी तरह अव्यवस्था हुई। आम लोगो के चरित्र मे गिरावट आई। व्यवस्था की रेल पटरी से उतर गई प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत सोच म इतना अधिक परिवर्तन आया कि वह सोच न्याय से हटकर अपनत्व की ओर जाने लगी, और सामाजिकता से हटकर स्वाथ भाव में परिवर्तित होने लगी। परिवार व्यवस्था व्यक्ति का सामूहिक अनुशासन और उत्तरदायित्व की ट्रेनिंग देने वाली पहलो इकाई है। दूसरी इकाई गांव है किन्तु इन सबको किनारे करके सामूहिक अनुशासन और उत्तरदायित्व की ट्रेनिंग देने का काम सीधे सरकार ने उठा लिया और वह न अनुशासन कर सकी न सामूहिक उत्तर दायित्व। व्यक्ति के कर्तव्य भाव को भी इस सोधी व्यवस्था ने बहुत नुकसान किया। परिणाम स्वरूप सारे भारत मे कर्तव्य की जगह अधिकार और अनुशासन के स्थान पर उच्चश्रृखलता और स्वार्थ भाव बढता गया और बढ़ता जा रहा है।

आज भारत में से लोगों की बाढ़ सी आई हुई है जो वर्तमान सारी समस्याओं का कारण चरित्र पतन को मानते हैं। इनमें अनेक लोग तो बहुत अच्छे विद्वान, समाजशास्त्रो, कानूनविद् या न्यायविद् भी है। मैं यह नहीं कह सकता कि ये लोग ऐसे तर्क भूल से दते हैं या जानबूझकर। इनसे कोइ यह नहीं पूछता कि चरित्र पतन का कारण क्या है और समाधान क्या है। ये लोग चरित्र पतन को सारा दोष देकर अपनी जवाबदही से मुक्ति पा जात हैं जबकि सच्चाई यह है कि चरित्र पतन, चरित्र पतन का कारण नहीं बल्कि अव्यवस्था का परिणाम है जो भारत में परिवार और गांव को पृथक करके सीधी संवधानिक व्यवस्था के कारण पैदा हुई है। ये सब विद्वान बड़ी मासूमियत से कहते हैं कि जब तक चरित्रवान लोग चुनकर नहीं जायेगे। तब तक चरित्र नहीं सुधरेगा और जब तक चरित्र नहीं सुधरगा तब तक व्यवस्था नहीं सुधरेगी। ये इसका उत्तर नहीं देते कि जब सम्पूर्ण समाज मे चरित्र की गिरावट है तो ऐसी स्थिति में चरित्रवान कैसे उपर जायेगा और कौन उपर पहुंचायेगा। ये यह प्रश्न भी टाल जाते हैं कि सतालिस में जब आज की अपेक्षा कई गना अधिक चरित्रवान लोग सत्ता में थे तब चरित्र की गिरावट क्यों हुई या देश अव्यवस्था की ओर क्यों गया। चरित्र पतन का कारण दोषपूर्ण नीतियॉ थी जो उन चरित्रवानों में सामाजिक ज्ञान का अभाव और राजनैतिक ज्ञान का आधिक्य की नीतियों के कारण है। मौलिक नीतियॉ समाजशास्त्र का विषय है और उक्त मौलिक नीतियों के आधार पर व्यवस्था का ढांचा बनाना राजनीति शास्त्र का। हमारे राजनेताओं ने कभी इस संबंध में समाजशास्त्रियों से परामर्श नहीं किया राजनेताओं और वकीलों ने मिलकर व्यवस्था का एक ढ़ांचा बना लिया। यहॉ तक कि गांधी जी को भी इन्होंने इस ढ़ांचे से दूर रखा। यही कारण था कि व्यवस्था में न परिवार शामिल हो पाया न गांव। अब इन समस्याओं पर नये सिरे से विचार करके परिवार को व्यवस्था की पहली इकाई घोषित करना आवश्यक है।

परिवार का वर्तमान टूटा, अस्पष्ट स्वरूप न संवैधानिक स्वरूप ग्रहण कर सकेगा न ही समाधान कर सकेगा। पश्चिम ने परिवार की परिभाषा पति पत्नि और बच्चे की मान्य की। चीन ने परिवार शब्द को हटाकर कम्यून शब्द स्थापित किया और सम्पत्ति को भी कम्यून ने मान्य किया। गांधीजी ने सांसारिक जीवन में पति पत्नि और बच्चे, आपराधिक कार्य में व्यक्ति और सम्पत्ति के मामले में गांव को इकाई माना। मेरे विचार में एक पृथक परिभाषा की आवश्यकता है ''संयुक्त सम्पत्ति और संयुक्त उत्तरदायित्व के आधार पर एक साथ रहने हेतु सहमत व्यक्तियों का समूह।'' इस परिभाषा में बिना रक्त संबंध के लोग भी दोनों की सहमति से परिवार के सदस्य बन सकते हैं अर्थात् परिवार गठन में रिश्ते अनिवार्य नहीं होंगे। इसी तरह नई परिभाषा में सम्पत्ति न व्यक्तिगत होगी न ही गॉव की बल्कि वह सम्पूर्ण परिवार की संयुक्त होगी। कोइ व्यक्ति परिवार का सदस्य रहते हुए पृथक सम्पत्ति न रख सकेगा। न उपयोग कर सकेगा। तीसरी बात यह होगी कि परिवार के प्रत्येक सदस्य के कार्यो का उत्तरदायित्व सामूहिक होगा। जैसा कि अभी मंत्रि मंडल का सामूहिक उत्तरदायित्व होता है। यदि परिवार का कोई सदस्य अच्छा या बुरा करता है तो उससे पूरा परिवार प्रभावित होगा अन्यथा आप उस सदस्य को परिवार से बाहर कर दें। इस मूल सिद्धांत पर परिवार का संवैधानिक ढांचा खड़ा हो सकता है।

हमें व्यवस्था के ठीक–ठीक संचालन के लिये परिवार व्यवस्था को खड़ा करना ही होगा। मैंने एक सुझाव दिया है। इस सुझाव पर एक बहस छेड़कर एक संशोधित स्वरूप बनाया जा सकता है। इस सुझाव पर अनेक शंकाएॅ और प्रश्न खड हो भी सकते हैं और किये भी जा सकते हैं। ऐसे प्रश्न और शंकाओं का हम स्वागत करेंगे। किन्तु यदि ऐसे प्रश्नों के साथ कोई सुझााव भी जुड़े हो तो हमें इस विचार मंथन को आगे बढ़ाने में बहुत सुविधा होगी। किसी प्रचलित व्यवस्था में यदि कोई मूलभूत परिवर्तन का सुझाव आता है तो प्रश्न तो आते ही हैं और आने भी चाहिये। सतर्कता बहुत ही आवश्यक है किन्तु जब हम अन्तिम रूप से तय कर चुके हैं कि व्यवस्था में परिवार की भागीदारी होनी चाहिये तो आपके प्रश्न उक्त वर्तमान व्यवस्था के स्थान पर परिवार व्यवस्था के प्रश्न में सकारात्मक होने चाहिये, नकरात्मक नहीं।

वतमान व्यवस्था पूरी तरह असफल सिद्ध हो चुकी है। अब यह व्यवस्था छोटे मोटे सुधारों से ठीक नहीं हो सकती। इसमें मौलिक परिवर्तन करने होंगे। व्यक्तिगत सम्पत्ति और स्वार्थ अपराध वृद्धि में सहायक हो रहे हैं। अपराध नियंत्रण हेतु तात्कालिक प्रयासों के साथ–साथ दीधकालिक प्रयास भी करना आवश्यक है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार को संशोधित करके पारिवारिक सम्पत्ति के रूप में प्रावधान करने से सोंच में अन्तर आयेगा ही। साथ ही यदि अपराधों के संबंध में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के स्थान पर सामूहिक उत्तरदायित्व का कानून बने तो कुछ सुधार अवश्य ही होगा। गांधीजी ने गाव की सम्पत्ति का सुझाव दिया था। वह सुझाव व्यवहारिक था या अव्यवहारिक इस विवाद में मैं नहीं पड़ना चाहता। मैं तो सिफ यही कह सकता हूँ कि उक्त प्रस्ताव का लेश मात्र भी लागू नहीं हुआ। हम अब उक्त प्रस्ताव की एक कड़ी के रूप में उसे पारिवारिक मानने की बहस शुरू कर रहे हैं। आशा है कि आपका उत्तर मिलेगा।

पत्रोत्तर

1. श्री बहादुर सिंह यादव, धनारी, बदायूँ, उत्तरप्रदेश

झारखंड के राज्यपाल और सुप्रीम कोर्ट के आदेश के संबंध में पक्ष–विपक्ष में अनेक विचार विभिन्न अखबारों के माध्यम से पढ़ने को मिले। लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ जी चटर्जी तथा पूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर के विचार भी प्रकाशित हुए। मुझे इन दोनों के तर्क मजबूत दिखें। आपने इस संबंध में ज्ञानतत्व में कुछ नहीं लिखा। आपको भी अपने विचार व्यक्त करने चाहिये।

2. श्री अवध नारायण यादव, अध्यक्ष जिला सर्वोदय मंडल, सुपौल, बिहार

ज्ञानतत्व पढ़ता रहा हूँ। न्यायपालिका द्वारा विधायिका के काया में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से टकराव शुरू हुआ है यदि न्यायपालिका सुझाव तक सीमित रहे तो टकराव नहीं होगा। आपका क्या विचार है?

उत्तर–लोकतंत्र में कानून का शासन होता है, शासन का कानून नहीं। सभी कानून एक संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत बनाये जाते हैं जिनकी संरचना, प्रयोग और सदुपयोग के लिये क्रमशः विधायिका, कार्यपालिका और न्यापालिका की रचना की गई। इन तीनों का समन्वय ही व्यवस्था है। संविधान की संरचना कुछ इस प्रकार को गई है कि तीनों इकाइयॉ एक दूसरे की सहायक भी रहें और नियंत्रक भी। तीनों का लक्ष्य है ''व्यवस्था''। यदि इस कार्य में कोई इकाई कमजोर पड़ती है तो अन्य इकाइयॉ उसकी सहायता करती है और यदि कोई इकाई ऐसे अधिकारों का दुरूपयोग करना शुरू कर देती ह तो अन्य इकाइयॉ उसे नियंत्रित करती है। इसे Check and balance system कहा जाता है।

संविधान के अनुसार किसी भी इकाई को यह अधिकार नहीं कि वह किसी भी व्यक्ति का सीधा न्याय देने का प्रयास करें। कोइ व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से तो न्याय दे सकता है या न्याय प्राप्ति म सहायता कर सकता है किन्तु किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं की वह अपने संवैधानिक की सहायता से किसी का सीधा न्याय देने का प्रयास करें। उसे हर हालत में कानून के अनुसार ही न्याय देना होगा। न्यायपालिका भी हर हालत में कानून के अनुसार न्याय देने के लिये बाध्य ह। उसे कानून की व्याख्या करने का तो अधिकार है किन्तु न्याय की व्याख्या वह नहीं कर सकती। इसी तरह विधायिका को न्याय की व्याख्या करने का तो अधिकार है किन्तु कानून की व्याख्या का नहीं।

पिछले वर्षो में न्यायपालिका आर विधायिका में टकराव बढ़ा है। टकराव के कारण समन्वय समाप्त हुआ है। टकराव की पहल विधायिका की ओर से हुई जब विधायिका न संसद सर्वोच्च मानना और कहना शुरू कर दिया। विधायिका ने कार्यपालिका को दबा दिया और न्यायपालिका किकर्तव्य विमुढ़ होकर मूकदर्शक को दबा दिया और न्यायपालिका किंकर्तव्य विमूढ़ होकर मूकदशक बनी रही। राजनेताओं ने सीधा न्याय देने के नाम पर वह धमा चौकडो मचाई कि कानून की धज्जियां उड़ गई। राजनैतिक दल के रूप में साम्यवादियों ने सीधे न्याय के सर्वाधिक प्रयत्न किय और दूसरे नम्बर पर कानून तोडकर न्याय दिलाने के पक्षधर रहे समाजवादी। दूसरी ओर अन्य दलों ने कानून और न्याय दोनों को ठेगा दिखाते हुए अधिकारियों से मिलजुलकर अपने काम करवाने का मार्ग अपनाया। कानून ऐसी मनमानी रोकने में असफल सिद्ध हुआ। ”

राजनीतिक उच्चश्रखलता को पहली चुनौती दी चुनाव आयुक्त श्री शेषन ने। सारे कानूना को एक तरफ रखते हुए भी कानूनी तरीके उन्होंने राजनैतिक मनमानी पर अंकुश लगाया। न्यायपालिका ने भी उस समय, कुछ दबकर भी शेषन का साथ दिया। शेषन की इस मनमानी को भारतीय जनमानस का भरपूर समर्थन और प्रशंसा मिली। न्यायपालिका ने भी अपनी जनहितयाचिका प्रणाली को तीव गति से बढ़ाया और न्यायपालिका भी सीधे न्याय देने के लिये मैदान में कूद पड़ी। न्यायपालिका ने संसद सर्वोच्च के नारे को चुनौती देते–देते न्यायपालिका सर्वोच्च मानना शुरू कर दिया। न्यायपालिका विधायिका का काम करने लगी। न्यायपालिका को जहां कानून और न्याय
के बीच दूरी दिखी वहीं न्यायपालिका ने न्याय के पक्ष में स्वयं को खड़ा कर लिया जबकि उसे सीधा न्याय देने की अपेक्षा कानून बदलने की आवश्यकता तक स्वयं को सीमित कर लेना चाहिये था। परिणाम यह हुआ कि विधायिका के कार्यो मे रोज रोज राजनैतिक हस्तक्षेप से राजनेता तिलमिलाने लगे। राजनेताओं पर न्यायपालिका के नियंत्रण से आम नागरिक बहुत प्रसन्न था किन्तु राजनेताओं में इसका भारी आक्रोश था। मैं स्वयं भी न्यायपालिका के ऐसे हस्तक्षेप से खुश होते हुए भी इस परंपरा को अनिष्टकर मानता रहा। इसी बीच गोवा का और झारखंड के राज्यपालों का मामला आ गया।

लोकतंत्र का एक सामान्य नियम है कि उसमें न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका एक दूसरे के पूरक भी होते हैं और नियंत्रक भी। इसके तीन अर्थ होते हैं :– (1). सहायक (2.) तटस्थ (3.) प्रतिरोधी। किसी भी परिस्थिति में तीनो भूतिकाएँ भिन्न–भिन्न भी हाती हैं और करनी भी पड़ती हैं। यदि किसी एक पक्ष की नीतियॉ भी ठीक है और नीयत भी तो शेष दा को उनका सहयोगी होना चाहिये। यदि किसी पक्ष की नीतियॉ गलत हों और नीयत ठीक हो तो अन्य दो को उसमें तटस्थ होना चाहिये और स्वयं को सलाह तक सीमित रखना चाहिये। किन्तु यदि किसी पक्ष को उसमें बाधा खड़ी करनी चाहिये भले ही कानून की सीमाओं में रहते हुए उनका उल्लंघन ही क्यों न करना पड़े। वर्तमान समय मे न्यायपालिका विधायिका के ऐसे कामों में बहुत हस्तक्षेप कर रही है जो विधायिका की नीतिगत गलितयॉ है। ऐसे मामलों में न्यायालयों को सिर्फ सलाह तक ही सीमित रहना चाहिये। किन्तु झारखंड का मामला ऐसा है जहॉ नीयत की गलितयॉ है। विधान सभा अध्यक्ष और राज्यपाल ने मिलकर अपने अधिकारों का दुरूपयोग करना शुरू किया। न्यायपालिका को ऐसा दुरूपयोग रोकन में आगे आना ही चाहिये। यदि न्यायपालिका कार्यपालिका के इस संयुक्त दुरूपयोग को नहीं रोकती तो और कौन रोकता? विधायिका तो कुछ कर

नहीं पाती क्योंकि उसक साथ तो अन्याय हो ही रहा था। राष्ट्रपति की इच्छा का आदर नहीं किया गया। ऐसी स्थिति में उच्चश्रृंखल राज्यपाल और विधानसभा अध्यक्ष के षड़यंत्र को विफल करने में न्यायपालिका की भूमिका सराहनीय है। यदि न्यायालय कानूनों के एसे अर्थ न निकाले तो तीनों इकाइयां इतनी पृथक–पृथक हो जावेंगी कि किसी की नीयत पर किसी अन्य का कोई अंकुश रहेगा ही नहीं।

एक उदाहरण दें। एक कर्फ़्यू के अन्तर्गत देखते ही गोली मारने के आदेश जारी हैं। ड्युटी पर तैनात सिपाही एक ऐसे व्यक्ति को गोली मार देता ह जो वास्तव में कर्फ़्यू का उल्लंघन तो कर रहा था किन्तु वह गोली मारने वाले सिपाही से व्यक्तिगत शत्रुता रखता था तथा उस समय अन्य कई वैसा ही उल्लंघन करने वालो से उसका आचरण भिन्न नहीं था। इस मामले में यद्यपि गोली मारने का उसे पूरा कानूनी अधिकार था किन्तु चूँकि उस व्यक्ति का आचरण और उल्लंघन करने वालों से भिन्न नहीं था तथा गोली मारने के पोछे गोली मारने वाले का भिन्न उद्देश्य था इसलिये न्यायालय को लेख से हटकर भी इस मामले में हस्तक्षेप करना चाहिये। झारखंड मामले में राज्यपाल का आचरण भिन्न नीयत प्रमाणित करता था। इसलिये न्यायालय का हस्तक्षेप उचित था।

लोकसभा अध्यक्ष जिस राजनैतिक दल के सदस्य हैं उस दल के संस्कार ही ऐसे हैं कि वह किसी का नियंत्रण स्वीकार नहीं कर सकता। सब जानते हैं कि हड़ताल या चक्काजाम कराने का प्रयत्न पूरी तरह अलोकतांत्रिक हैं। भले ही इन्हें कानून ने कितनी भी मान्यता क्यों न दे रखी हो। चक्का जाम करना तो हमारा अधिकार हो सकता है किन्तु चक्का जाम कराना या आवागमन अवरूद्ध करना हमारा अधिकार नहीं हो सकता। आप अपने न्याय प्राप्ति के लिये किसी अन्य तीसरे पक्ष से अन्याय नहीं कर सकते। साम्यवादियों को लोकतंत्र का कखग भी नहीं मालूम। तभी तो इनके एक प्रमुख नेता हड़ताल और चक्का जाम कराने और आवागमन बाधित करने को लोकतांत्रिक अधिकार घोषित करते है। और यदि न्यायालय इसके विरूद्ध टिप्पणी करता है तो वे न्यायालय के विरूद्ध आंदोलन खड़ा करने का प्रयास करते हैं। सोमनाथ चटर्जी उसी राजनैतिक संस्कारों में पले बढ़े लोकसभा अध्यक्ष हैं। उन्हें अध्यक्ष की गरिमा समझनी चाहिये। उन्हें न्यायालयों द्वारा विधायिका ओर कार्यपालिका के नीतिगत मामलों में हस्तक्षेप का पूरा विरोध करना चाहिये, जो उन्होंने कभी नहीं किया। किन्तु अधिकारों के दुरूपयोग के मामलों में इन्हें चुप रहना चाहिये था जब कि ये मुखर हो गये। मेरे विचार में इन्हें साम्यवादी चरित्र से उपर उठना चाहिये। इस मामले म चन्द्रशेखर जी अधिक स्पष्ट हैं। उन्होंने पूर्व में भी न्यायपालिका द्वारा किये जाने वाले हस्तक्षेप का विरोध किया और इस बार भी किया तो यह इसलिये क्षम्य है कि वे इतनी बारीकी में नहीं गये किन्तु सोमनाथ जी ने तो बिल्कुल विपरीत आचरण करे अपने पद की गरिमा घटाई ही है। सोमनाथ जी ने अभी अभी बयान दिया है कि ''कल को न्यायालय मुख्यमंत्रो नियुक्त भी कर सकता है''।
मेरे विचार में सोमनाथ जी को यह समझना चाहिये कि यदि विधायिका या कार्यपालिका कानूनों का दुरूपयोग करके लोकतंत्र के साथ षड़यंत्र करेगी तो न्यायालय को न्याय की सुरक्षा के लिए ऐसा करना भी पड़ सकता है क्या राज्य पाल और विधानसभा अध्यक्ष सभी नियम कानूनों की इच्छाओं को ताक में रखकर जिसे चाहें उसे मुख्यमंत्री घोषित कर दें और न्यायपालिका किंकर्तव्य विमूढ़ बनी रहे ऐसी मंशा न कानून की है न संविधान की और न लोकतंत्र की।

मैं अब समझता हूँ कि विगत कुछ वर्षो से न्यायपालिका, विधायिका या कार्यपालिका के नीतिगत मामलों में अनावश्यक और बहुत अधिक हस्तक्षेप करने लगी है। न्यायपालिका सर्वोच्च है ऐसा न तो सच ह न ही न्यायालयों को इस प्रतिस्पर्धा में पड़ना चाहिये। सामान्यतया न्यायालयों को विधायिका और कार्यपालिका के कार्यो मं सहयोगी की भूमिका अपनानी चाहिये जबकि वह व्यवस्था को कमजोर करके भी व्यक्तिगत न्याय की ओर अधिक झुक जाती है। बीच की स्थिति में उसे विधायिका और कार्यपालिका को अपनी गलत नीतियों के लिये सतर्क कर देना चाहिये और यदि कभी कार्यपालिका या विधायिका की पूर्णतः या आंशिक रूप से नीयत ही गड़बड़ हो जावे तो अपवाद स्वरूप न्यायपालिका को वैसा ही हस्तक्षेप करना चाहिये जैसा उसने झारखंड प्रकरण में किया है।

3. –श्री अशोक यादव, रोहिणी, दिल्ली

पिछले दिनों सर संघ चालक श्री सुदर्शन जी ने श्री अटल बिहारी बाजपेयी को लक्ष्य बनाकर जो टिप्पणियॉ की वे अभूतपूर्व थीं। इन टिप्पणियों का संघ पर भी प्रभाव पड़ा और भाजपा पर भी। क्या उनकी ये टिप्पणियॉ उचित थीं ? क्या ऐसी चर्चाओं से संघ परिवार को लाभ होगा ? ऐसी टिप्पणी करना कितना समयानुकूल था और कितना प्रतिकूल ? इस पर आप विस्तृत चर्चा करें।

उत्तर– इस मुद्दे पर विचार करते समय हमें स्थितियों पर विचार करना होगा।
(1) क्या ये टिप्पणियॉ संघ द्वारा सुविचारित निष्कर्ष निकालकर योजना पूर्वक की गई? **(2)** क्या ये टिप्पणियॉ संघ द्वारा अल्पकालिक आवेश का परिणाम थीं ? **(3)** क्या ये टिप्पणियॉ संघ प्रमुख सुदर्शन जी की अटल जी के विरूद्ध व्यक्तिगत कुंठा की परिणाम थी ?
संघ बहुत ही योजना पूर्वक टिप्पणी करने के लिये प्रसिद्ध है। सर संघ चालक तो आमतौर पर कोई टिप्पणी करते ही नहों। यदि कोई टिप्पणी सर संघ चालक करते हैं तो वह पूरे संघ की सुविचारित टिप्पणी मानी जाती है। वर्तमान समय में यह प्रमाणित हो चुका है कि संघ चौराहे पर खड़ा है। यदि संघ का लक्ष्य राजनैतिक सत्ता प्राप्त करना है तो उसे हर हालत में उदारवादी हिन्दूत्व के उस मार्ग पर चलना ही होगा जो भा.ज.पा. ने अटल आडवाणी के नेतृत्व में स्वीकार किया है। भारत का आम हिन्दू धर्म निरपेक्ष स्वभाव का है। उसके संस्कार बदलकर भाजपा को खड़ा नहीं किया जा सकता। भारत के आम नागरिकों के समक्ष धर्म के साथ साथ अन्य भी अनेक समस्याए हैं जिनका समाधान कटटरवादी हिन्दुत्व के पास नहीं है। अतः भाजपा के पास उदारवादी हिन्दुत्व के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग है ही नहीं। दूसरी ओर संघ का उद्देश्य राजनैतिक न होकर धर्म प्रधान है तो उसे हर हालत में भाजपा से पिण्ड छुड़ाना ही होगा। यदि भाजपा से संघ की पहचान समाप्त हो जावे तो मंदिर भी संभव है और तीन सौ सत्तर भी। संघ की शक्ति की प्रत्यक्ष अवहेलना साम्यवादी दलों को छोड़कर अन्य कोई दल नहीं कर पायेंगे। हो सकता है कि संघ ने गहन सोच विचार के बाद भाजपा से पिण्ड छुड़ाकर तटस्थ संगठन के रूप में स्वयं को स्थापित करने का मन बना लिया हो। वैसे सुदर्शन जी के बयान से इतना गभीर अर्थ निकलना कठिन दिखता है किन्तु यदि ऐसा है तो यह संघ को आगे बढ़ने का एक अच्छा अवसर प्रदान कर सकता है।

दूसरे प्रकार की संभावना भी हो सकती है कि संघ के आनुषांगिक संगठन विश्व हिन्दू परिषद, बजरंगदल, भारतीय मजदूर संघ तथा स्वदेशी जागरणमंच पूरी तरह अटल आडवाणी की आर्थिक तथा मंदिर संबंधी नीतियों के विरूद्ध रहे। ये चारों संगठन दिनरात भाजपा की उदारवादी नीतियों को गालियॉ देते रहे और एक नया राजनैतिक दल बनाने तक की धमकी देत रहे। इन चारों संगठनों के अभाव में संघ की शक्ति कमजोर दिख सकती है। अतः इनके रोज–रोज के प्रचार से प्रभावित होकर संघ ने अटल आडवाणी नेतृत्व से पिण्ड छुड़ाने का मन बना लिया हो। पिछले चार माह से जिस तरह संघ पदभार में आडवाणी जी की परेड ली जाती थी उसके समक्ष आडवाणी जी लगातार झुकते चले गये। संघ के तीखे तेवरों का भाजपा में कोई विरोध भी नहीं हुआ। इससे उत्साहित होकर संघ ने अंतिम आक्रमण भावावेश में आकर कर दिया हो और इसके परिणामों की गंभीरता पर कुछ गंभीर सोच न बनाई हो।

तीसरा आधार भो संभव है। सुदर्शन जी के मन में अटल जी के प्रति कुंठा का भाव सदा मौजूद रहा। प्रधानमंत्री बनने के बाद अटल जी ने संघ के प्रति जैसा व्यवहार बनाया उससे वह कुंठा बढ़ी ही। अटल जी के व्यक्तिगत खान पान और रहन सहन की जो बातें सामने आई वे संघ की आचार संहिता के विपरीत थीं। इन बातों ने आग में घी का काम किया। परिणाम स्वरूप बिना किसी गंभीर योजना के सुदर्शन जी ने व्यक्तिगत कुंठा के कारण ऐसी टिप्पणी कर दी हो और जब उक्त टिप्पणी से पीछे हटना संभव न हो। मुझे तो यह तीसरा कारण अधिक संभव दिखता है भले ही वैसा न भी हों।

यदि उक्त टिप्पणी का पहला सुविचारित आधार है तो चिन्ता की कोई बात नहीं। इससे दीर्घकालिक परिणाम ठीक ही होंगे। भाजपा और संघ स्वतंत्रता पूर्वक अपनी दिशाओ में आगे बढ़ेंगे। किन्तु यदि उक्त टिप्पणी का पहला कारण न होकर दूसरा या तीसरा है तो दोनों ही संगठनों को गंभीर क्षति हो सकती है। प्रारंभ में तो कुछ ऐसा लगा था कि भाजपा को अधिक और संघ को कम क्षति होगी किन्तु अब तो उल्टा दिख रहा है कि भाजपा को कम और संघ को अधिक क्षति होने की संभावना है। यदि अटल जी के विरूद्ध लगाये गये दो आरोप सच भी हैं तो अटल जी भारत में अन्य दलों के राजनेताओं की अपेक्षा कम बुरे माने जायेंगे। यदि सुदर्शन जी अटल जी के आचरण को अपनी कसौटी पर कसकर उसे पास फेल करना चाहते हैं तो यह उनकी भूल है अटल जी की नहीं। राजनीति में उन्हें व्यावहारिक कसौटी ही बनानी होगी और यदि नहीं बना सकते तो राजनीति में टांग अड़ाना गलती है। मेरी संघ के भो कई अच्छे लोगों से चर्चा हुई। किसी के समझ में यह नहीं आया है कि सुदर्शन जी ने उक्त टिप्पणी हेतु यह अवसर ही क्यों चुना। अटल आडवाणी यदि चुनाव जीत जाते तब भी क्या वे दोषी थे ? और यदि नहीं थे तो अब ऐसी कठोर बातें क्यों ? क्यों नहीं यह इशारा धीरे से कर दिया गया। चाह माह पूर्व ही स्थिति एकदम खराब दिख रही थी। बिहार और झारखंड के चुनावों ने उसे कुछ सम्हाला। फिर एकाएक ऐसा आक्रमण क्यों ? किसी क कुछ समझ नहीं आ रहा। चारों ओर मरघट की शांति है।

सुदर्शन जी की टिप्पणी ने संघ और भाजपा दोनो को गंभीर क्षति पहुॅचाई है। टिप्पणी में सच्चाई कितनी है यह महत्वपूर्ण नहीं। महत्वपूर्ण यह है कि टिप्पणी किसी सीमा तक भाजपा तथा संघ के हित में हैं, कितनी हिन्दुत्व को मजबूत करेगी और कितनी राष्ट्र के लिये उपयोगी होगी। उपरोक्त तीनों ही मामले में टिप्पणी उपयोगी नहीं। भारत का एक सामान्य नागरिक भी दबी जुबान से प्रश्न करता है कि सर संघ चालक जैसे सर्वोच्च पद पर आसीन व्यक्ति स्वयं अपना पद युवाओं को न सौंपकर अटल आडवाणी का उम्र के आधार पर युवाओं को पद देने की मांग करे तो चुप होने के अतिरिक्त कोइ उत्तर नहीं सुझता। अच्छा होता यदि सुदर्शन जी ऐसी टिप्पणी के पूर्व कुछ और विचार मंथन करते। किन्त अब तो जो होना था हो चुका। बीमारी सड़क पर आकर आम लोगों के समक्ष प्रकट हो चुकी है। देखिये आगे इसका क्या परिणाम होता है।

लोक स्वराज्य मंच

लोक स्वराज्य की दिशा में एक रचनात्मक पहल व्यक्ति, समाज एवं देश में जुड़े जमीनी सवालों को लेकर ज्ञान यज्ञ मण्डल पिछले कई वर्षों से जनता की सामूहिक भागीदारी पर आधारित भावी संघर्ष की शक्ल को जन आंदोलन के रूप मं उकेरने की कोशिश कर रहा है। इसी प्रयास में सन् 1947, 67,एवं 1977 के संघर्ष में सकिय एवं निर्णायक लोग पिछले दिनों विभिन्न राज्यों एवं अंचलों में सम्पन्न हुई चर्चाओं में शिरकत कर चुके हैं। आजादी से आज तक स्वराज अथवा स्वशासन लाने के लिए मौलिक रूप से कई प्रयास किये गये। लेकिन स्पष्ट योजना के अभाव में अलग–अलग कारणों से तत्कालीन सत्ता के शिखरों द्वारा इन प्रयासों को यूटोपिया करार दे दिया गया। स्वराज्य की मौलिक अवधारणा प्रथम बार महात्मा गांधी ने विस्तार स जनमानस के सामने रखी थी लेकिन कार्यान्वन तक पहुॅचने से पहले ही उनकी मौत ने स्वराज्य के पैरांकारों को हाशिए पर धकेल दिया। व्यक्तिगत अथवा संस्थागत रूप में बचे कुछ अवशेष स्वराज्य के मौलिक सच को सतह पर लाने का निरंतर प्रयास करते रहे हैं।

इसी कड़ी में दूसरी बार सनसनी के तौर पर जयप्रकाश नारायण ने अपने जीवन काल के अंतिम चरण में ''सम्पूर्ण कांति'' नारे के नीचे स्वराज की ओर जाने की कोशिश की लेकिन (1) व्यवस्था परिवर्तन के वैकल्पिक (संवैधानिक) प्रारूप तथा स्पष्ट योजना के अभाव एवं (2) नेतृत्व की किंकर्तव्यमूढ़ता तथा आत्मविश्वास में कमी के चलते, अवसरवादी, राजनेता जे.पी. के कंधों पर सवार होकर सत्ता के शिखरों पर जा बैठे। सम्पूर्ण कांति का सैलाब कब और कैसे तीव्रगति से 'इंदिरा हटाओ' के नारे में जा सिमटा, जब तक इसके मार्ग तक पहुॅचकर संभाला जाता तब तक बहुत देर हो चुकी थी। जे.पी. 'असफल इतिहास पुरूषों' की जमात में पहुॅच चुके थे।

हमने कई बार राजनीति में व्यक्तियों को बदला और कई बार सत्ता में दलों को भी बदला किन्तु कोई समाधान नहीं निकला क्योंकि वर्तमान राजनैतिक चरित्र पतन भारत की संवैधानिक व्यवस्था की कमजोरियों का परिणाम था, कारण नहीं। अच्छे लोगों को राजनीति में भेजना न तो परिणाम मूलक है, न ही संभव। सन् संतालीस में राजनीति में अच्छे लोगों का प्रतिशत आज से कई गुना अधिक होने के बाद भी निरंतर गिरावट का कम शुरू हुआ जो आज भी जारी है। द्सरी आर वर्तमान स्थिति ऐसी है कि अच्छा आदमी चुनकर वहॉ जा ही नहीं सकता है, यदि चला गया तो वह अच्छा रहेगा नहीं और यदि कोई रह भी गया ता वह वहॉ से निकाल दिया जायेगा। व्यक्ति बदलने या दल बदलने से किसी तरह से साधन की कल्पना हमारी मृगतृष्णा के समान है क्योंकि दोष संवैधानिक व्यवस्था में है और लक्षण राजनीतिक दलों या व्यक्तियों में।

आध्यात्मिक मिट्टी से बनी भारत भूमि अपनी प्रकृति के चलते भावना प्रधान रही है। जब जब भी इसको सपने दिखने की कोशिश की गयी है भारतीय धरा ने पूरी ईमानदारी से उनको आत्मसात किया है यह दीगर बात ह कि सपने दिखाने वालों ने ईमानदारी के साथ उनको पूरा नहीं किया। अंधेरा जब गहरा और लम्बा हो जाय तो प्रकाश की हल्की सी किरण भी चकाचौंधर कर जाती है। टिमटिमाते जूगनू ('दूत')भी ''देवदूत'' नजर आते हैं। हिन्दुस्तान को तकदीर एवं तद्बीर को मुकम्मल रूप से बदलने के लिए भारत भूमि पर हमशा से ही प्रयोग होते रहे हैं। विगत के दशकों में भी भारतीय फिजाओं को रोशन करने का खम ठोकने वाले अनेक 'देवदूत' आज अपने अपने दलों में सिमटे हुए राजघाट एरिया (समाधि परिक्षेत्र) में दो गज जमीन के जुगाड़ में लगे हुए हैं। ये वो लोग हैं जिन्होंने कभी दावे किये थे देश की तकदीर बदलने के, तद्बीर बदलने के। आज स्वयं की तस्वीर बदलने में, छबि बनाने में जुटे हुए हैं।

नेहरू से लेकर अटल तक, भारत के घन और लम्बे अंधकार को ज्ञानयज्ञमंडल ने तोडने का बीड़ा उठाया है। वर्षो तक शोध व तपस्या ने आगामी स्वराज्य भारत की ऐसी नींव तैयार की है जिस पर हम सबको सही मायनों में समृद्ध, स्वाभिमानी एवं बुलंद भारत का निर्माण करना है, जो दुनियां के पटल पर नीति का नियंता बनकर उभरे। गहन विचारविमर्श एवं चिंतन के बाद यह पाया गया कि वर्तमान व्यवस्था के

द्वारा 'भारत के सपनों का भारत' निर्माण असंभव है। ज्ञान यज्ञ मण्डल के मनीषियों ने विभिन्न क्षेत्रों के चिंतकों, अनुभवी शख्सियतों एवं जमीनी लोगों के साथ बैठकर अपने प्रणेता श्री बजरंगलाल (स्वामीजी) की देखरेख में स्वदेशी तकनीक पर आधारित भावी स्वराज्य भारत की संवैधानिक व्यवस्था का पहला प्रारूप देश के एक कोने छत्तीसगढ़ प्रांत के रामानुजगंज शहर से दूर एक पहाडो पर स्थित आश्रम में तैयार किया। यही आश्रम आगे चलकर उनकी चिंतन भूमि बना और वहीं स कर्म भूमि का मार्ग प्रशस्त हुआ। यहीं पर अपने साथियों के साथ मिलकर उन्होंने ज्ञान यज्ञ मण्डल की स्थापना की एवं भारत की समस्याओं को लेकर निरंतर 15 वर्षों तक स्वदेशी संदर्भो में अनुसंधान किया। 4 नवंबर, 1999 को शोध पूरा हुआ। साफ–साफ यह खोज निकाला गया कि –

क. देश की समस्याएँ क्या हं ? ख. क्यों हैं ? ग. कैसे सुलझेंगी ?

क. भारत की वर्तमान तस्वोर– देश की समस्याएँ क्या हैं ? :– राष्ट्र आगे बढ़ रहा है। समाज पीछे जा रहा है। चरित्र और नैतिकता सिर्फ किताबों में लिखी नजर आती है। स्वाभिमान संग्रहालयों में भी सुरक्षित नहीं है। भौतिक विकास तीव्र गति से हो रहा है। भारत विकासशील से विकसित देशों को श्रेणी में जाने को लालायित है। लेकिन भारत की प्रमुख रूप से निम्नलिखित समस्याएँ निरंतर बढ़ रही है एवं वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था के पास भविष्य में भी इनके समाधान का कोइ मार्ग नजर नहीं आता :–

1. चोरी–डकैती 2. बलात्कार 3. मिलावट 4. जालसाजी 5. हिंसा और आतंक 6. भ्रष्टाचार 7. चरित्रपतन 8. साम्प्रदायिकता 9. जातीय कटुता 10. आर्थिक असमानता 11. श्रम शोषण

भारत की समस्याओं के कम इस तरह होने चाहिये थे –

(1) वास्तविक –चोरी, डकैती, मिलावट, बलात्कार, आतंक जालसाजी, धोखा, हिसा आदि ।
(2)कृत्रिम– भ्रष्टाचार, चरित्र पतन, साम्प्रदायिकता, जातीय कटुता, आर्थिक असमानता, श्रम शोषण।
(3)प्राकृतिक– सूखा, बाढ़, भूकम्प, बीमारियॉ, भूख आदि।
(4)भूमण्डलीय– पर्यावरण प्रदूषण, बढ़ती आबादी, अशिक्षा।
(5)सामाजिक– छुआछूत, बाल विवाह, नशा मुक्ति, सामाजिक न्याय आदि।

किन्तु वर्तमान समय में समाधान की प्राथमिकताओं का कम बिल्कुल विपरीत है।

नाटकः– जो अब तक राजनीतिज्ञों द्वारा किये जा रहे हैं–

किसी भी शासन का दायित्व होता है कि वह प्रत्येक नागरिक को सुरक्षा और न्याय दे किन्तु हमारे देश की व्यवस्था सुरक्षा और न्याय देने के बदले में समस्याओं की वृद्धि में सकिय हो गई। ग्यारह समस्याओं में से प्रथम शासन की निष्क्रियता के कारण बढी हैं। शासन ने इन पांच समस्याओं के समाधान पर समुचित ध्यान नहीं दिया। दूसरी ओर छः समस्याएँ के समाधान पर समुचित ध्यान नहीं दिया। दूसरी आर छः समस्याएँ शासन की अति सकियता का परिणाम थीं। ये छः समस्याएँ शासन की अति सकियता के सह उत्पाद मात्र हैं, वास्तव में समस्या नहीं। लोकतंत्र में आमतौर पर यह सिद्धांत काम करता है कि जो शासन न्याय और सुरक्षा देने में जितना ही कमजोर हाता है, वह अपनी विश्वसनीयता एवं अस्तित्व बनाये रखने के लिये उतनी ही अधिक सकियता से विभिन्न प्रकार के नाटक करता है जैसे कि–

समाज को कभी एकजुट नहीं होने देना। समाज में धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रियता, उम्र, लिंग, आर्थिक स्थिति और उत्पादक उपभोक्ता के रूप में वर्ग निर्माण करना, वर्ग विद्वेष फैलाना और वर्ग संघर्ष तक ले जाना। हमारे सभी राजनैतिक दल पूरी ईमानदारी से आठों आधारों पर या तो वर्ग निर्माण तक पहुंच चुके हैं या वर्ग संघर्ष तक। साम्प्रदायिकता, जातीय, कटुता, तथा अनेक वर्ग संघर्ष इसी राजनैतिक सक्रियता के परिणाम मात्र है। समाज के विभिन्न अंगो एवं क्षेत्र में वर्ग संघर्ष कराते हुए भारत की समस्याओं का समाधान ढुढा गया। नतीजा भारतीय राजनीति दो हिस्सों में बंट गई। राजनेताओं ने हमेशा से ही कोशिश की कि समाज को एकजुट नहीं होने दिया जाय वर्ग भेद को कायम रखा जाय। व्यक्ति–समाज के समक्ष इतनी सारी समस्याएँ खडो कर दी जायें की वह हमेशा उन्ही में उलझा रहे, और बंदरबाट की राजनीति निर्बाध गति से चलती रहे। धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा, लिंग, उम्र एवं आर्थिक आधार पर समाज को बांटने के बाद अब एक नये आधार पर समाज को बांटने की पिछले कई वर्षों से कोशिश की जा रही हैं। महिला उत्पीड़न के नाम पर महिला और पुरूष के बीच भेद खड़ा कर दिया है। पुरूषों को अत्याचारी घोषित किया जा चुका है। स्त्री पुरूष के बीच संशय उत्पन्न करने की कोशिश की जा रही ह। यहॉ तक कि पति पत्नी के बीच दीवार खडो करके परिवार नामक ईकाई को नेस्तनाबूत करने का षड़यंत्र किया जा रहा है। जिसका असर भविष्य के नौनिहालों पर पड़ना तय है। भविष्य की भारत की तस्वीर क्या होगी, यह गंभीर चिंता का विषय है।

राष्ट्र–राज्य राजा शब्द को उपर उठाकर समाज शब्द को नीचे गिराने/तोड़ने की लगातार कोशिश जारी है ताकि समाज कभी सिस्टम–राजा के विरूद्ध लामबंद ना हो सके। इसके लिए सिस्टम से पोषित हो रहे समूहों द्वारा लगातार समाज को भ्रमित करने, समस्याओं में उलझाये रखने, वैमनस्य फैलाने एवं धार्मिक प्रवचनों/भावनाओं के वेग में उलझा कर समाज को अकर्मण्यता तक ले जाने के प्रयास हो रहे हैं।

वचारिक बहस को हमेशा दबाया गया। भावनात्मक बहस को उभारा गया। संसद तक में भावनात्मक बहस पर जूतम पैजार एवं गाली–गलौज आम बात हो गयी है। प्याज के भाव पर सरकार बदलकर आध्यात्मिक भारत के इतिहास में एक शर्मनाक अध्याय जुड़ चुका है। मंदिर–मस्जिद के नाम पर खून बहा देने की हमारी तत्परता आज भी राजनेताओं की आंखो में हिंसक चमक पैदा कर देती है। अक्षम, अयोग्य एवं अनपढ़ जैसे शब्दों के द्वारा आजादी के पहले से ही राजनेताओं द्वारा हीन भावना पैदा की जा रही है। कानून के मकड़जाल में व्यक्ति को फंसाये रखने के लिए अधिकतम कानूनों का निर्माण किया जा रहा है ताकि व्यक्ति को खाते–पीते, चलते–फिरते यहां तक कि सोते–जगते भी कानून तोड़ने का आभास होता रहे और समाज अपराध मनोवृत्ति का शिकार हो जाय।

समस्याओं का समाधान इस तरह किया जा रहा है कि उसमें स एक नयी समस्या खड़ी हो रही है। करों में बढ़ोतरी के लिये शराब बनाने के कारखाने,
बिक्री की दुकाने खोली जाती हैं फिर शराब के दुष्प्रभावों को रोकने के लिये करोड़ों रूपयों की बंदर बांट करके योजनाएँ बनायी जाती हैं। सामाजिक व्यवस्था शराब के दुष्प्रभावों से अलग तरह से चौपट हो रही है। समाज को बांटकर शासक हमेशा से ही बदर की भूमिका मं अपने को सुरक्षित रखे हुए है। कर प्रणाली, सरकारी योजनाएँ, नीतियॉ एवं कानूनों का चालाकी पूवक इस तरह से प्रारूप तैयार किया जाता है कि गरीब और अमीर की बीच की खाई आजादी से अब तक निरंतर चौड़ी होती जा रही है।

ख. क्यों बढ़ रही है ? :– भारत की वर्तमान व्यवस्था का ठीक–ठाक विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि भारत ने शुरू से ही भारत की समस्याओं का समाधान भारतीय संदर्भो की बजाय विदेशी संदर्भो में खोजने की मूर्खता/चालाकी की। हमने भारत की संवैधानिक व्यवस्था बनाते समय भारत की न तो समस्याओं को ठीक से समझा न यहॉ की तासीर को। समाधान के लिए स्वदेशी तकनीक पर आधारित मॉडल नहीं अपनाया गया। विदेशी तकनीक के द्वारा समस्याओं की पहचान, समाधान और प्राथमिकता तय की गयी। भारत न कभी स्वदेशी व्यवस्था बनाई न ही स्वदेशी संविधान बनाया। भारत की समस्याओं की पहचान या तो वामपंथी देश करते रहे हैं या पश्चिम के पूँजीवादी देश। यही दोनों इन स्व0 घाषित समस्याआं का समाधान भी बताते रहे हैं। वामपंथी देश भारत की प्रमुख समस्याओं में भूख, बेरोजगारी, सामाजिक आर्थिक असमानता, सामाजिक आर्थिक शोषण जैसे मुद्दों को शामिल करके इसका इलाज बताते है ''वर्ग संघर्ष'' इन लोगों ने अपने प्रयत्नों से पने एजेन्ट पूरे भारत में खड़े कर दिये हैं जो अपनी सारी शक्ति इसी प्रचार पर लगाते हैं। पश्चिम के पूँजीवादी देश भारत की प्रमुख समस्याओं में एड्स, पोलियो, मानवाधिकार, बालविवाह, बाल श्रम, नशा पर्यावरण प्रदूषण, बढ़ती आबादी, जल संकट आदि को शामिल करके उसके लिए अनेक कानून बनाना ही इसका समाधान बताते हैं। ये देश भारत की अनेक संस्थाओं को अपार धन देकर उनसे ऐसी समस्याएँ उठवाते हैं और फिर शासन को कर्ज या सहायता देकर उनका समाधान करवाते हैं। आज तक भारत ने कभी न अपनी समस्याओं पर सोचा और न ही उनक स्वदेशी समाधान पर। वामपंथी या पूँजीवादी देशों द्वारा उठाई गई विदेशी समस्याओं और उनके समाधान पर हमने पचपन वर्ष बिता दिये। आज भी हमारे अनेक मित्र स्वदेशी का अर्थ स्वदेशी साबन, स्वदेशी दंत मंजन या स्वदेशी शीतल पेय के उपयोग तक सीमित करके स्वदेशी आंदोलन चलाते हैं। दूसरी ओर हमारे इर्दगिर्द पूँजीवादी और साम्यवादी देशों के धन से संचालित लोग या संस्थाएँ हमें गुमराह करके हमारी प्राथमिकताएँ बदल रही हैं हम यह भूल जाते हैं कि भारत में स्थापित विदेशी व्यवस्था हमारी सबसे बड़ी समस्या है।

ग. समस्याएँ कैसे सुलझेंगी ? समाधान :–

अ. निरंतर विचार–विमर्श एवं शोध के बाद यह तय पाया गया कि भारत का कस्टोडियन लोकतंत्र यदि मैनेजर प्रणाली में बदल दिया जाये तो भारत की उच्चश्रृंखल राजनीति पर अंकुश लग सकता है अर्थात् जनता के द्वारा चुने गए लोग जनता के मैनेजर होन चाहिए संरक्षक या अभिरक्षक नहीं। बेलगाम राजनीति पर लगाम लगाये बिना कोइ भी परिवर्तन सम्भव नहीं है। सिस्टम को बदलना आवश्यक है। वर्तमान सिस्टम की कमर तोड़ने के लिए संविधान में तीन संशोधन आवश्यक है:– (ये संशोधन राजनेताओं के नीचे लाल गलीचों के स्थान पर कांटों का जाल बुनने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसलिए संघर्ष की राह भी निश्चित रूप से कांटों भरी होगी।)

(1) सांसद, विधायक या किसी अन्य विधिवत् निर्वाचित जन प्रतिनिधि को निर्वाचक मंडल द्वारा वापस बुलाने के अधिकार की व्यवस्था हो।
(2) संविधान में वर्णित नीति–निर्देशक सिद्धांतों का परिपालन बाध्यकारी बनाने हेतु धारा सैंतीस में संशोधन कर ''नहीं '' शब्द निकाला जाये। जिससे केन्द्रीय सूची क दायित्व उसके लिए बाध्यकारी हों।
(3) संविधान में अधिकारा की विभाजन सूची में केन्द्रीय, प्रादेशिक एवं समवर्ती सूचियों के अतिरिक्त परिवार सहित स्थानीय संस्थाओं की पृथक सूची बनाकर जोड़ी जाये।

(ब) स्वदेशी पद्धति को अपनाकर भारत की प्रस्तावित व्यवस्था का संवैधानिक स्वरूप निम्न पांच मूल तत्वों पर आधारित होना चाहिए–

(1)अकेन्द्रीयकरण – स्वराज्य अर्थात् प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता। अर्थात् व्यक्ति, परिवार, गांव, जिला, राज्य, देश नामक इकाई को अपने नीतिगत निर्णय की स्वतंत्रता
(2)अपराध नियंत्रण की गारंटी
(3)अधिकतम आर्थिक समानता
(4)श्रम मूल्य प्रतिष्ठा एवं उसमें वृद्धि
(5)समान नागरिक संहिता। अर्थात् भारत सौ करोड़ व्यक्तियों का देश है। न कि धर्म, जाति, क्षेत्र, उम्र, लिंग, भाषा व आर्थिक स्तर पर बने समूहों का संघ।

(स) अ और ब में उल्लेखित उद्दश्यों को वर्तमान व्यवस्था सहजता से पूरा नहीं करेगी क्योंकि अ और ब में उल्लेखनीय उद्दश्यों को मान लेने का मतलब है वर्तमान व्यवस्था का बेरोजगार होना। इसलिए 1975 सरीखा एक जनमत खड़ा करने की नितांत आवश्यकता है। वर्तमान व्यवस्था के असफल होने मं चरित्र की गिरावट मुख्य कारण है। चरित्र गिरावट के लिए सिस्टम दोषी है। अगर व्यक्ति का चरित्र गिरेगा तो सिस्टम खराब होगा। अगर सिस्टम खराब हागा तो व्यक्ति का चरित्र गिरगा। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। पहले किसको बदला जाये। हल है सिस्टम को बदला जाये– व्यक्तियों को लामबंद करके।

बंटवारे से लेकर अब तक किया जा रहा समाधान जो पूरी तरह से निरर्थक साबित हुआ है :–

बार–बार सत्ता के परिवर्तनों में ही भारत ने अपनी समस्याओं को खोजने की आदत डाल ली है या राजनेताओं द्वारा डलवा दी गयी है। व्यवस्था एक बार भी नहीं बदली गयी। बंटवारे से पूर्व की व्यवस्था नये–नये दलों/चेहरों के द्वारा आज भी कायम है। नेताओं के भारी भरकम व्यक्तित्व एवं लच्छेदार शब्दों में भारत का व्यक्तित्व बुरी तरह से फंस चुका है। दूसरी ओर पूँजीवादी एवं साम्यवादी देशों के भारत

में बैठ एजेन्ट भारत की समस्याओं के समाधान का एजेन्डा तैयार कर रहे हैं। वर्तमान व्यवस्था, शरीफों, गरीबों तथा श्रम जीवियों के शोषण के उद्दश्य से अपराधियों, पूंजीपतियों तथा बुद्धिजीवियों का एक योजनाबद्ध षड़यंत्र है। यह एक ऐसा चक्र है जिसके बीच में बैठा भारत का संसदीय लोकतंत्र संसद एवं विधान सभा में इस चक्र को शक्ति प्रदान कर रहा है तथा बीच में फंसे आम आदमी को बहला फुसला रहा है कि यह चक्र उसकी सुरक्षा के लिए ही बना है।

इस चक्र को तोड़ने के नाम पर अथवा जाने अनजाने उसकी मदद करने अथवा समस्याओं के समाधान की दिशा में कुछ अलग तरह से भी प्रयास हो रहे हैं, जो इस प्रकार हं :–

1. कुछ लोग अथवा संस्थाएँ निरंतर रूप से व्यक्ति निर्माण, समाज निर्माण एवं समाज सुधार के कार्य में लगे हुए हैं। उनका ऐसा मानना है कि इससे व्यवस्था बदल जायेगी। जबकि उनके इन अच्छे एवं अप्रभावी प्रयासों का लाभ वर्तमान व्यवस्था उठा रही है। अतः व्यवस्था परिवर्तन ही एक मात्र मार्ग है। व्यवस्था से आशय संवैधानिक तथा राजनैतिक व्यवस्था से है। सामाजिक व्यवस्था से नहीं इसलिए समाज सुधार निर्माण के कार्यों की अपेक्षा संवैधानिक व्यवस्था परिवर्तन को उच्च प्राथमिकता देनी चाहिये।
2. हम सुधरेंगे जग सुधरेगा। पीढ़ियों से ऐसा प्रवचन करने वालों का एक वर्ग लगातार इस जुमले को भारत को रटाता रहा है। पिछले लगभग 25 सालों से धार्मिक प्रवचनों की नयी–नयी दुकानों से चल रही, 'मोक्ष' एवं 'अध्यात्म' की लहरों से जनता का एक बहुत बड़ा उपजाऊ एवं कर्मठ वर्ग अकर्मण्य एवं धर्मभीरू हो गया है। आज तक ना तो हम सुधरे और ना ही जग सुधरा। व्यवस्था के विरूद्ध सम्भावित जनाकाश प्रवचन सुनने में मग्न है। संतों की नोयत पर हम संदेह नहीं कर रहे हैं। लेकिन उन्हें अपने प्रयासों का कभी तो कसौटी पर कसना चाहिए क्योंकि देश की बहुत बड़ी मानव शक्ति उनकी गिरफ्त में है। गायत्री परिवार, आर्य समाज तथा अनेक धार्मिक संतों से हमारा यह निवेदन है कि वे समाज की वर्तमान स्थिति क आधार पर उसका मार्गदर्शक करें।
3. कुछ लोग अथवा संस्थाएँ ऐसी हैं जो निरंतर इस कार्य में लगी है कि हम गलत नहीं करेंगे और जो गलत कर रहे हैं हम उनको समझायेंगे कि वे गलत ना करे। भले ही वे माने या न माने। हम प्रयत्न करते रहेंगे इसी से व्यवस्था बदल जायेगी। ऐसा मानने वालों में गांधीवादी अथवा सर्वोदय के लोग अग्रणी हैं।
4. एक वर्ग ऐसा है जो बंदूक की नोक पर गलत कार्य को रोकने अथवा अपना विचार फैलाने या व्यवस्था परिवर्तन इससे हो जायेगा ऐसा मानता है। हम देखते हैं कि व्यवस्था उनको अपराधी, नक्सलवादो या देशविरोधी घोषित कर मारने पर उतारू हो जाती है या अगर वे कभी–कभी भारी पड़ते हैं तो उनको गले भी लगाती है। फिर वे भी व्यवस्था के अंग बन जाते हैं। ऐसा लगता है कि दोनों का चरित्र एक ही है।

समाधान जड़ पर प्रहार करने में हैः– हमारा ऐसा मानना ह कि उपरोक्त सारे प्रयत्न या तो निरर्थक है या अपूर्ण। हमें सम्पूर्ण व्यवस्था को इस तरह बदलना है कि कोई सबल निर्बल के साथ अन्याय ही ना कर सके।

हमें अपनी सारी शक्ति चरित्र निर्माण से हटाकर व्यवस्था बनाने में लगा देनी चाहिये क्योंकि चरित्र कभी भी शासन के माध्यम नहीं बदलता। चरित्र बनाने का काम समाज का है और व्यवस्था बनाने का काम शासन का। यदि व्यवस्था ठीक होगी तो चरित्र स्वयं ही ठीक हो जायेगा आर यदि व्यवस्था गड़बड़ हुई तो चरित्र सुधर ही नहीं सकता चाहे कितना भी प्रयत्न करें।

इस विषय पर गहन चिंतन के बाद निष्कर्ष निकला कि हमारे समाज शास्त्रियों के प्रयत्न स संबंध में विपरीत परिणाम दे रहे हं। इतिहास बताता है कि जब व्यवसायी ठीक हो तो शराफत अच्छे परिणाम देती है किन्तु जब व्यवस्था गड़बड़ हो तो शराफत घातक हो जाती है। ऐसे समय में धूर्तता शराफत की सुरक्षा समझदारी स ही हो सकती है शराफत से नहीं। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे सभी सामाजिक धार्मिक सलाहकार हमें लगातार शराफत का उपदेश दिये जा रहे हैं। जिसके परिणाम स्वरूप धूर्तता और अपराध वृत्ति मजबूत हो रही है आज शराफत छोड़कर समझदारी के प्रयोग करने की आवश्यकता ह क्योंकि शराफत से शराफत की सुरक्षा हो नहीं सकती। गांधी जी ने कायरता की अपेक्षा संघर्ष की आवश्यकता बताई थी और अहिंसा को संघर्ष का शस्त्र बनाया था किन्तु हम आज अपनी कायरता को छिपाने के लिए अहिंसा को ढाल के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। हमारे सामने सभो प्रकार के अन्याय अत्याचार हो रहे हैं और हम अहिंसक लोग कोकाकोला के विरूद्ध संघर्ष छेड़कर संघर्ष का नाटक पूरा कर रहे हैं।

लोक स्वराज्य मंच की स्थापना :– अनुसंधान एवं जनमत तैयार करने के पूर्व की तैयारियों को अंतिम रूप देने क बाद यह महसूस किया गया कि स्वराज्य भारत के मूलमंत्र–योजना ब्लूप्रिंट विजन को जनमानस के बीच सार्वजनिक कर दिया जाये। इसके लिए एक ऐसे संगठन की आवश्यकता अवश्यभावी हो गयी जिसमें देश के कोने–कोने से लेकर सुदूर अंचलों तक के योद्धाओं के साथ–साथ देश भर में आम आदमी के सवालों को लेकर जूझ रहे चिंतक– आंदोलनकारी एवं जनसंगठन सामूहिक रूप से शिरकत करें ताकि बड़े स्तर पर जनमत–जनाकाश तैयार किया जा सके। इसके मद्देनजर 9 नवम्बर सन् 2000 को रचनात्मक कार्यकर्ता सदन, बी–29, मंगलपाण्डे मार्ग, भजनपुरा, नई दिल्लो–53 में डॉ. आर्य भूषण भारद्वाज की अध्यक्षता में लोक स्वराज्य मंच की स्थापना की गयी। शासन के अधिकार, दायित्व एवं हस्तक्षेप कम से कम हो इस ओर लगे व्यक्तियों/संगठनों के सामूहिक मंच की साकार कल्पना ही लोक स्वराज्य मंच का वास्तविक आधार तैयार करेगी। स्वराज्य आंदोलन में लगे कार्यकर्ताओं के लिए डॉ. आर्य भूषण भारद्वाज के प्रेरक शब्द ''सोचो सकारात्मक, करो स्थानीय स्तर पर एवं जियो वैश्विक नागरिक की तरह'' स्वराज्य की मूल भावना को अंगीकार करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

हमें सुराज्य नहीं, स्वराज्य चाहिये

सुशासन का सबसे आकर्षक मार्ग दिखता है सत्ता का केन्द्रीयकरण। किन्तु सत्ता के माध्यम से सुशासन आ ही नहीं सकता क्योंकि सत्ता पर योग्य, चरित्रवान तथा नैतिक व्यक्ति का बैठना और बैठने के बाद सत्ता के दुर्गुणों से दूर रहना अत्यन्त कठिन कार्य है। पिछले पचास वर्ष हमने सत्ता के माध्यम से सुशासन के असंभव प्रयासों में व्यर्थ ही खो दिये। जबकि सुशासन का एक ही आधार है स्वशासन। स्वशासन ही सारो समस्याओं का एकमात्र समाधान है किन्तु अब तक स्वशासन और सुशासन के प्रयासों के बीच स्पष्ट विभाजन रेखा बन ही नहीं

सकी। सुराज्य के लिये किये जाने वाले प्रयास वर्तमान व्यवस्था में निरर्थक हैं क्योंकि सुराज्य तो स्वराज्य का परिणाम है कारण या सहायक नहीं। लोक स्वराज्य मंच ने सुराज्य के स्थान पर स्वराज्य हेतु प्रबल जनमत खडा करने की चुनौती स्वीकार की है।

आवश्यकता :–

1. वर्तमान व्यवस्था पूरी तरह असफल एवं परिवर्तन योग्य।
2. किसी अच्छी से अच्छी व्यवस्था से भी लोक स्वराज्य व्यवस्था अच्छी।
3. यदि किसी व्यवस्था की नीयत संदेहास्पद हो तो उसे तत्काल बदलना सर्वोच्च प्राथमिकता। वर्तमान व्यवस्था की नीयत संदेहास्पद।
4. वर्तमान कुव्यवस्था का एकमात्र कारण केन्द्रीयकरण और समाधान अकेन्द्रीयकरण।
5. सत्ता का विकेन्दोयकरण समस्या में संशाधन मात्र। अकेन्द्रीकरण समाधान।
6. वर्तमान समस्याओं का एकमात्र समाधान स्वराज्य प्रणाली, अर्थात् व्यक्ति, परिवार, गॉव, जिला, प्रान्त और राष्ट्र में से प्रत्येक को स्वतंत्र इकाई मानकर अधिकारों का इस तरह विभाजन हो कि प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की अधिकतम स्वतंत्रता हो।
7. वर्तमान सभी राजनैतिक दल सुराज्य के पक्षधर। स्वराज्य उनका लक्ष्य नहीं। सुराज्य स्वराज्य में बाधक। स्वराज्य सुराज्य में सहायक।

जन जागरण का पहला चरण

भारत की उच्चश्रृंखल राजनीति समाज के समक्ष एक चुनौती है। निराश जन मानस समाधान के रूप में हिंसा नक्सलवाद की ओर बढ़ रहा है। हिंसक समाधान न तो कोई निश्चित समाधान है, न ही उचित और न ही आवश्यक। देश को वर्तमान राजनैतिक उच्चश्रृंखलता से भी मुक्त करना है और संवैधानिक मार्ग से ही करना है यह चुनौती लोक स्वराज्य मंच ने स्वीकार कर ली है। हम व्यवस्था परिवर्तन में अपनी शक्ति लगायेंगे। लोक स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए व्यवस्था परिवर्तन हमारा मार्ग है। हम भारत में तत्काल इस हेतु निम्न तरीके से जन जागरण की घोषणा करते हैं :–

1. तीन सूत्रीय संविधान संशोधन हेतु व्यवस्था पर दबाव बनाने के लिए लोक स्वराज्य मंच द्वारा जनता को तैयार करना।
2. देश के प्रमुख चिंतकों द्वारा स्वराज्य भारत के सवाल पर देश भर में सामूहिक चर्चा–परिचर्चा, गोष्ठियों, सम्मेलनों एवं समाचार संवादों के द्वारा जनचेतना/आंदोलन की जमीन तैयार करना।
3. देश भर के दौरे, सम्मेलन एवं गोष्ठियों में से संगठन निर्माण /आंदोलन हेतु जुझारू साथियों की खोज।
4. सितम्बर सन् 2006 में एक माह का बौद्धिक मेला आयोजित किया जायेगा । जिसमें देश भर से जुटे 1000 न्यायविद्/ संविधान वेत्ता / विभिन्न सवालों पर संघर्ष कर रहे जन संगठन / समाज सेवक एवं राजनेताओं सहित विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ एक ही स्थान पर लगातार एक माह तक चर्चा करके स्वराज्य भारत के संविधान के भावी प्रारूप को अंतिम रूप देंगे। यह आयोजन ज्ञान यज्ञ मंडल करेगा।
5. ज्ञान यज्ञ मंडल लोक स्वराज्य की दिशा में कार्य कर रहे अन्य संगठनों से संपर्क/समन्वय करेगा।
6. अगस्त 2007 में बैठकर पहले चरण की समीक्षा की जायेगी कि वर्तमान व्यवस्था इन संशोधनों के लिए कितनी गंभीर है। यदि वर्तमान व्यवस्था इसके लिए तैयार नहीं होती है तो 2007 में प्रजातांत्रिक तरीके से संविधान संशोधन के अन्य उपायों (आंदोलन के तरीको)पर विचार किया जायेगा। हमारा लक्ष्य है सन् 2009 तक स्वराज्य भारत का निर्माण।

नोटः–

1. आपके सकारात्मक सुझाव सादर आमंत्रित है।
2. लोक स्वराज्य मंच के विस्तृत दर्शन को समझने के लिए आवश्यक है ज्ञान यज्ञ मंडल के मनीषियों द्वारा तैयार किया गया व्यवस्था परिवर्तन का वैकल्पिक स्वरूप यानी संविधान का भावी प्रारूप एवं अलग–अलग विषयों / समस्याओं पर तैयार पुस्तकां का पठन–पाठन एवं चिन्तन मनन।
3. आप कर सकते ह :–

क. अपने क्षेत्र में लोक स्वराज्य मंच की बैठक का आयोजन–इकाई का गठन।

ख. लोक स्वराज्य साहित्य का वितरण।

ग. लोक स्वराज्य तथा व्यवस्था परिवर्तन के सवाल पर देश भर में साहित्य स्तर पर चर्चा चला रही पत्रिका ज्ञान तत्व का सदस्यता अभियान।

घ. लोक स्वराज्य के चिंतकों के साथ बैठकर अपने सवालों / उत्सुकताओं का समाधान ताकि भविष्य के संघर्ष के लिए आपके अंदर जमीन तैयार हो सके।

निवेदक
पुष्पेन्द्र चौहान

पता

कायालय ज्ञानयज्ञ मंडल
बजरंगलाल अग्रवाल
बनारस चौक, अंबिकापुर
सरगुजा छत्तीसगढ़ 497001
फोन नं. 07774–231544
मोबाईल 09425254192

कार्यालय लोक स्वराज्य मंच
रचनात्मक कार्यकर्ता सदन,
बी–29 मंगलपाण्डे मार्ग,
भजनपूरा, नई दिल्ली–53
दुरभाषः 9899730331, 9811443566